सिजदा उस एक तेग़ तले का

फ़ख़्रे मिल्लत डाक्टर मौलाना सैय्यद कल्बे सादिक़ साहब क़िब्ला

कुर्आन मजीद ने खुदाए वाहिद की परस्तिश व इबादत पर जिस क़द्र ज़ोर दिया है इतना ज़ोर और किसी बात पर नहीं दिया। उसने शिर्क को क़तई हैसियत से नाक़ाबिले माफी जुर्म क़रार दिया है। उस माबूदे बरहक़ की पैदा की हुई लामहदूद काएनात में हमारा पूरा निज़ामे शम्सी एक ज़र्रे की भी हैसियत नहीं रखता। इस मुख़्तसर से निज़ामे शम्सी के एक अदना तुफ़ैली सैय्यारा ज़मीन के एक छोटे से गोशे में अगर एक इन्तिहाई कमज़ोर व नातवाँ और फानी मख़्लूक़ किसी ग़ैरे ख़ुदा के सामने सरे इबादत झुकाती है तो उसकी इस हरकत से उस माबूदे हक़ीक़ी की लामुतनाही शहंशाहियत ममलकत व जबरूत को क्या ख़तरा पैदा हो सकता है कि वह हर जुर्म को नज़रअन्दाज़ करने पर तैयार हो मगर शिर्क को बर्दाश्त करने पर तैयार न हो।

बात दर अस्ल कुछ और है शिर्क से अल्लाह की पनाह ज़ाते ख़ालिक़ को कोई नुक़सान नहीं पहुँचता बल्कि शाहकारे ख़िलक़त व मस्जूद मलाएका इन्सान जब पत्थरों के सामने अपना सर ज़मीन पर रखता है तो अपने आपको जमादात से भी पस्त क़रार देता है जिस इंसान के क़ब्ज़े में पूरी दुनिया क़रार दी गयी है वह जब अपने आपको पत्थरों तक का मोहताज समझने लगता है तो अपने आप को "अहसनि तक़वीम" की मन्ज़िल से गिराकर "अस्फला साफिलीन" की इन्तिहाई पस्ती तक पहुँचा देता है।

ताहम इंसान व इंसानियत को पस्त तरीन मन्ज़िल तक पहुँचा देने वाली यह बुत परस्ती ख़ास जिहालत की पैदावार होती है। वही जिहालत जिसे रसूल (स0) ने इन्सान की सारी ख़राबियों की जड़ क़रार दिया है। इसलिए आफताबे इल्म के तुलू होने के साथ ही इस क़िस्म की बुतपरस्ती की लौ माँद पड़ जाती है।

इस बुत परस्ती से ज़्यादा ख़तरनाक बुतपरस्ती वह होती है जब पत्थरों के बुत गोश्त व पोस्त के बुतों की शक्ल में बदल जाते हैं और नमरूद व फिरऔन के ऐसे ख़ुद पसन्द, नफ्स परस्त, ज़ालिम व जाबिर फरमाँ रवा अपनी ख़ुदाई और रुबूबियत का एलान करके ख़ल्क़े ख़ुदा से अपनी बन्दगी व इबादत का इक़रार लेकर उनके तमाम इन्सानी हुक़ूक़ को सल्ब व ग़सब कर लिया करते हैं वह उनके माल व जान ही के मालिक नहीं बन बैठते उनकी औरतों की इज़्ज़त व आबरू तक के मालिक व मुख़्तार बन जाते हैं और अगर उनकी ख़ुदाई को किसी पैदा होने वाले बच्चे से ज़रा ख़तरा पैदा होने का अन्देशा हो तो अपनी हुकूमत बल्कि रुबूबियत व उलूहियत को बचाने के लिए वह हज़ारों बच्चों को पैदा होने के साथ माँ के सामने ही ज़िब्ह कर देने से बाज़ नहीं आते।

हमारे करीम व रहीम ख़ालिक़ ने पहली क़िस्म के बुतपरस्तों को अक्सर व बीश्तर सम्भल जाने को मौक़ा भी दिया है अज़ाब में ताख़ीर भी की है मगर इस दूसरी क़िस्म की बुतपरस्ती को तहस–नहस करने में उसने कभी ताख़ीर नहीं की

इधर इस क़िस्म की बुतपरस्ती ने सर उभारा, उधर उसकी तलवार चली, नमरूद पैदा हुआ तो फौरन इब्राहीम (अ0) उसको ख़ाक चटाने के लिए भेज दिये गये और फिरऔन ने अपनी ख़ुदाई का एलान करके बनीइस्राईल को ज़ुल्म व इस्तेबदाद का निशाना बनाया तो मूसा (अ0) अपना डण्डा सम्भाले उसके दरबार में घुस गये और उस वक़्त तक क़रार न लिया जब तक उसकी उलूहियत का बेड़ा बहरे अहमर की मौजों में न डिबो दिया और कमज़ोर व नतवाँ बनी इस्राईल को चश्मे ज़दन में फिरऔनी ममलकत का वारिस व मालिक न बना दिया।

लेकिन ख़ल्क़े ख़ुदा पर सबसे बड़ी मुसीबत उस वक़्त पेश आती है जब यही नमरूदियत व फिरऔनियत यही नमरूदी व फिरऔनी नफ्स परस्ती व जाह परस्ती ''लाइलाहा इल्लल्लाह'' का ज़बानी इक़रार करके खुदाए वाहिद के हक़ीक़ी परस्तारों की सफों में शामिल हो जाती है और दीनदार अफराद की सादा लौही से फाएदा उठाते हुए आहिस्ता–आहिस्ता नियाबत और ख़िलाफते रसूल (स0) के ऐसे मुक़द्दस मन्सब को मुलूकियत व शहंशाहियत की शक्ल दे देती है।

इस्लामी शरीअत लोगों के जान, माल, इज़्ज़त, आबरू, अक़ल, दीनी आज़ादी और नस्ल की हिफ़ाज़त को अपने बुनियादी मक़ासिद क़रार देती है वह दुनिया में सिर्फ अद्ल, इन्साफ, मसावात और आज़ादी की हुकमरानी देखना चाहती है और सद्रे अव्वल में उन्हें इक़दार को समाज में जारी करने के लिए जिस मुसलसल जिहाद का अहद मुसलमानों से लिया जाता था उस अहद को इस्लामी इस्तेलाह में बैअत कहा जाता था मगर जब ख़िलाफत ने मुलूकियत की शक्ल इख़्तियार कर ली तो मुसलमानों से जिहादे हक़ पर बैअत लेने के बजाए बादशाह सलामत की गुलामी पर बैअत ली जाने लगी और मुसलमानों से राहे हक़ के सिपाहियों की वर्दी उतरवा कर उन्हें लिबासे गुलामी पहनाया जाने लगा।

लेकिन चूँकि आज़ादी के मतवालों को गुलाम बनाने का यह सारा खेल परचमे लाइलाह से ज़ेरे साया और मस्जिदों की छाओं में अन्जाम दिया जा रहा था इसलिए इस्लाम की मुहब्बत में डूबे हुए मुसलमान सिर्फ ज़ाहिर को देखते रहे उसी नुमाइशी इस्लाम के पीछे छुपे हुए फिरऔनियत व नमरूदियत के चेहरों को न देख सके।

इस क़िस्म की नाम निहाद इस्लामी मुलूकियत में सब कुछ होता है। दुलहन की तरह पैरास्ता मस्जिदें होती हैं, मुतल्ला व मुज़ह्हब क़ुर्आन होते हैं। मस्जिदों में हुकूमतों के तनख़्वाहदार इमाम होते हैं। शानदार हसीन व जमील मिम्बर होते हैं मगर साथ ही हुकूमत के वज़ीफा पाने वाले सही मगर क़ारी भी होते हैं और मिम्बरों पर क़ाबिले ख़रीद व फरोख़्त सही मगर ख़तीब भी नज़र आते हैं यह सब होता है मगर वह मक़ासिद व इक़दार कहीं नहीं दिखायी देते जिनको आम करने के लिए इस्लाम आया था। ज़ाहिरी चमक–दमक तमतराक़ होता ही इसलिए है कि मुसलमान बस इन ही चीज़ों के देखने में ऐसा मगन रहे कि कुचले हुए समाजी इन्साफ, पिसी हुई इस्लामी मसावात और चूर–चूर आज़ादी–ए–बशर पर उनकी नज़र न पड़ सके। चुनानचे परचमे तौहीद के बिलकुल नीचे और मस्जिदों के ज़ेरे साया इस्लामी दौलत सिर्फ चन्द ख़ानदानों में सिमटती रही। हुकूमत के ख़िलाफ हल्की सी ज़बान खोलने वालों की ज़बानें खिंचती रहीं। हक़ व इन्साफ की बात करने वालों को

सरेदार लटकाया जाता रहा। ज़रा–ज़रा से शक पर अफराद ही नहीं ख़ानदानों को तहे तैग़ किया जाता रहा, घर, घर वालों पर गिराये जाते रहे मगर चूँकि यह सब ''लाइलाहा इल लल्लाह'' और तकबीर के नारों की गूँज में हो रहा था इसलिए लोग इसी को इस्लाम समझते रहे।

दरअसल इस्लाम, कुर्आन, मेहराब और मिम्बर की आड़ में छुपे हुए नमरूद और फिरऔन की गिरेबान पर हाथ डालने के लिए बसीरत भी दरकार थी और शुजाअत भी इस लिए 60 हिजरी में जब वारिसे अम्बिया नवास–ए–रसूल (स0) हुसैन इब्ने अली (अ0) से यज़ीद की बैअत का मुतालबा हुआ तो हुसैनी बसीरत यूँ सामने आयी कि आपने यह नहीं फरमाया कि मैं यज़ीद की बैअत नहीं करूँगा बल्कि आपने इरशाद फरमाया कि : ''मुझ जैसा शख़्स तुझ जैसे शख़्स से बैअत नहीं कर सकता।'' इस एक जुम्ले में सिर्फ इन्कारे बैअत नहीं है बल्कि इन्कारे बैअत की पूरी तारीख़ सिमटी हुई है। इस जुमले का मफहूम यह है कि मेरे ऐसों ने यज़ीद ऐसों की बैअत तारीख़ के किसी दौर में नहीं की है यानी मुझ से बैअते यज़ीद का मुतालबा करने वालों पहले तारीख़े इब्राहीम, मूसा, ईसा (अ0) और खुद रसलू (स0) की सीरत को देख लो। अगर इब्राहीम (अ0) ने नमरूद के सामने सर झुका दिया होता, अगर मूसा (अ0) फिरऔन के सामने सिजदे में गिर गए होते, अगर ईसा (अ0) ने रोमन इम्पाएर की गुलामी का इक़रार कर लिया होता और अगर हुज़ूर मुश्रिकीने मक्का के सरदारों के सामने सरे इताअत झुका देने पर तैयार हो गये होते तो मैं भी यज़ीद की बैअत कर लेता। हुसैन (अ0) का जुमला खुद बता रहा है कि इमामे वक़्त ने मिम्बरों, मस्जिदों, और सुनहरे कुर्आनों की पीछे छुपे हुए फिरऔन व नमरूद को पहचान लिया था यानी जब फिरऔनियत व नमरूदियत रुबूबियत की खुली हुई शक्ल होती है तो माबूदाने बातिल के दअ्वा–ए–ख़ुदाई के जवाब में लाइलाहा कहा जाता है और जब यही ख़बासतें इस्लाम के लिबास में ज़ाहिर होती हैं तो ''ला युबायिअु मिसलिह'' का नारा बुलन्द किया जाता है, हक़ के नुमाइन्दों की तारीख़ यह है कि वह बातिल के सामने कभी सर नहीं झुकाते न इबादत की शक्ल में न बैअत की सूरत में।

बसीरत के बाद अब शुजाअत की नौबत थी शुजाअत तलवार खींचने ही का नाम नहीं उसकी रूह, सब्र और कुव्वते बर्दाश्त है हुसैन (अ0) ने मुतालब–ए–बैअत के जवाब में ला कहकर इन्कारे बैअत किया तो अपने ऊपर आने वाली मुसीबत को नज़रों के सामने रख लिया था और मुक़ाबले के लिए अपने आपको तैयार कर चुके थे। मदीने में नाना का मज़ार, माँ की क़ब्र, भाई की क़ब्र छोड़ना पड़ी, छोड़ दी, जिसने बहुत से हज पैदल किये थे उसे ऐन हज के मौक़े पर हुरमते काबा बचाने के लिए हज को छोड़ कर मक्का को ख़ैरबाद कहना पड़ा, ख़ैरबाद कर दिया। राहे कूफा में अपने चचा के बेटे हज़रत मुस्लिम बिन अक़ील की कूफा में मज़लूमाना शहादत की ख़बर मिली, सब्र व शुक्र के साथ सुन ली फिर इब्ने ज़ियाद के लश्कर ने हुर की सरबराही में हुसैन का रास्ता बन्द किया तो हुसैन ने दुश्मन के प्यासे लश्कर पर अपने पास मौजूद पानी की सबील खोलकर इस्लामी इक़दार के पैधों की आबियारी की। दूसरी मोहर्रम को कर्बला पहुँचे, सातवीं मोहर्रम से पानी बन्द कर दिया गया। शबे आशूर को एक रात की मोहलत ली जो सिर्फ इसलिए थी कि एक तरफ जी भरकर

इबादत कर लें तो दूसरी तरफ अपने सिपाहियों को खुली आज़ादी दे दें कि जो जाना चाहे वह जा सकता है न किसी पर कोई जब्र है और न कोई पाबन्दी जो साथ रहे वह यह समझकर रहे कि कल अपनी जान नहीं इस्लाम के बचाने का मरहला सामने होगा। सुब्हे आशूर हुई तो हुसैन (अ0) ने मैदाने जंग से शहीदों के जनाज़े उठाना शुरु कर दिये, अपने हों या ग़ैरे बनी हाशिम, आज़ाद हों या गुलाम सबके साथ एक बर्ताव, एक रवैय्या एक तरह से क़दरदानी। जिस तरह अपने दम तोड़ते जवान बेटे के रुख़्सार पर रुख़्सार रखा उसी तरह दम तोड़ते हुए गुलामों जौन और वाज़ेह के रुख़्सारों पर रुख़्सार रखा। ज़ख़्म खाते रहे, लाशे उठाते रहे, प्यास भड़कती रही मगर चेहरे पर सुर्ख़ी ही रही। हुसैन (अ0) क्या बैअत करते जबकि हुसैन (अ0) की गोद की पाली चार बरस की मासूम बच्ची तक ने हुसैन (अ0) की रुख़्सते आख़िर के मौक़े पर यह मासूमाना फरमाइश तो की कि हमें नाना के रौज़े पर पहुँचा दीजिये मगर इस बच्ची तक ने यह न कहा कि बाबा यज़ीद की बैअत कर लीजिये कि चैन की सांस ले सकें।

अपनी शहादत से क़ब्ल हुसैन एक छः माह के प्यासे बच्चे को गोद में लेकर मैदाने कर्बला में आ गये। बज़ाहिर इसलिए कि बच्चे के लिए पानी का सवाल करें मगर हक़ीक़त में इसलिए कि फिरऔनियत के चेहरे पर पड़ी हुई इस्लाम की आख़री नक़ाब को भी तार–तार कर दें। सवाले आब पर बच्चे की कोमल गर्दन को तीर का निशाना बना दिया गया। यह तीर देखने में बच्चे के गले पर पड़ा था मगर हक़ीक़त में इस तीर ने यज़ीदियत के चेहरे पर इस्लाम की उस नक़ाब को तार–तार कर दिया था जिसके पीछे फिरऔनियत का मकरूह चेहरा पनाह लिए हुए था।

अस्रे आशूर के लम्हे थे, कर्बला की झुलसती ज़मीन थी, जब ज़ख़्मों से चूर–चूर प्यास की शिद्दत से निढाल रसूल (स0) के नवासे हुसैन (अ0) ने अपना सर आख़री बार माबूद की बारगाह में सिजदा बजा लाने के लिए ज़मीन पर रखा। उर्दू के यगाना शाएर मीर की नज़र में यही सिजदा थी जब उन्होंने कहा :

शैख़ पड़े मेहराबे हराम में पहरों दोगाना पढ़ते हैं
सिजदा उस एक तेग़ तले का उनसे हो तो सलाम करें

हुसैन (अ0) सिजदे से ख़ुद सर न उठा सके बल्कि किसी और ने काट कर नेज़ें पर उस सर को उठाया। इधर एक सूरज नेज़े पर तुलू हो रहा था उधर कर्बला के उफक़ पर आफताब, गोश–ए–मग़रिब में डूब रहा था।

यह कहके डूब गया आफताबे आशूरह
रहे हुसैन (अ0) की ता हश्र रौश्नी बाक़ी

ख़ेमे जला दिए गए। हुसैन (अ0) की लाश यज़ीदियों ने घोड़ों से पामाल कर दी। 11/मोहर्रम को हुसैन (अ0) के अहलेबैत (अ0) क़ैद करके शोहदा के कटे हुए सरों के साथ पहले सूबाई राजधानी कूफा में इब्ने ज़ियाद के दरबार में ले जाए गए फिर उन्हें यज़ीद के पाय–ए–तख़्त दमिश्क़ के सजे सजाए दरबार में लाया गया। ज़र में कमर गुलाम दस्तबस्ता खड़े थे। सिंध से लेकर स्पेन तक पर बनामे इस्लाम हुक्मरानी करने वाला डिक्टेटर कभी फतह व कामियाबी के आरज़ी नशे में चूर कभी कटे हुए सरों को देख कर मुस्कुराता था और कभी ज़ंजीरों में जकड़े हुसैन (अ0) के बीमार बेटे ज़ैनुलआबेदीन (अ0) को और

रस्सियों में जकड़ी बीबियों को देखकर क़हक़हे लगाता था।

फतह के बाजों की आवाज़ें दरबार के अन्दर आ रही थीं। यज़ीद ने रसूल (स0) की नवासी, अली (अ0) व फातिमा (स0) की बेटी, हुसैन (अ0) व अब्बास (अ0) की बहन ज़ैनब से कहा यह बाजों की आवाज़ें सुन रही हो, अब बताओ कि कौन जीता और कौन हारा। बहादर बाप की शेर दिल बेटी ने इन्तिहाई ख़ुदएतमादी के साथ जवाब दिया कि कौन हारा, कौन जीता यह अगर देखना है तो ज़रा ठहर जा। अभी मस्जिदों के मीनारों अज़ान की आवाज़ बुलन्द होगी अल्लाह की किबरियाई और उसकी वहदानियत की आवाज़ गूँजेगी। हमारी जंग इस आवाज़ को बचाने के लिए थी थोड़ी देर बाद तेरे बाजे बन्द हो जाएँगे मगर आवाज़े अज़ान अब सुब्हे क़यामत तक दुनिया के गोशे–गोशे से बुलन्द होकर अल्लाह की बड़ाई और वहदानियत और रसूल (स0) की रिसालत के एलान के साथ हमारी फतह का भी एलान करती रहेगी। □ □ □

बक़िया...........हुसैन (अ0) और हम

हक़ बात मुँह से निकाल सकें। मसलहतें अबा क़बा की दामनगीर हैं, हक़ बोलने का फल जो दुनिया से मिला करता है फितना व फसाद का लक़ब देकर फितने व फसाद के ख़ौफ की आड़ लिये बैठे हैं।

हुसैन (अ0) की मज्लिस में मोटे–मोटे आँसुओं से रोने वालों और दोनों हाथों से मातम करने वालों के सामने मश्हदे मुक़द्दस का वाक़ेआ भी हुआ, नजफे अशरफ का भी, जन्नतुलबक़ी की बर्बादी भी देख ली, इन्हीं हाथों को वाक़ेआत पर पर्दा डालते और पालीटिक्स की आड़ अवाड़ लगाते भी देखा गया।

हुसैन (अ0) के अन्सार ने हुसैन (अ0) से यह अहद किया था ''चाहे कुछ हो जाए हम हुज़ूर का दामन न छोड़ेंगे'' आज इसी क़ौम के लोग हुसैन (अ0) के ''मातम दार'' ''चाहे कुछ हो जाए'' के पुरज़ोर अलफाज़ के साथ हुकूमत से वफादारी का अहद बाँधते हैं। क्यों? आज हुकूमत व रिआया में हक़ नाहक़ की जंग हो रही है और हमारी क़ौम हमेशा से हक़ की तरफदार रही है।

ज़माने से पस्त और गिरावट की तरफ जा रही क़ौम, जिसमें न कोई स्प्रिट है, न अख़लाक़ी जुराअत तो वह उस वक़्त तक नहीं सम्भल सकती जब तक हुसैन (अ0) की अज़ीमुलमरतबत कुर्बानी के मक़सद से आँख छुपाती रहेगी। हुसैन (अ0) का ख़ून तेरी बुराइयों के दफ्तर धोने के लिए नहीं बहाया गया है। हुसैन (अ0) की शहादत हमारी नजात का ज़रीआ बन गयी है। अक़ीदे की सेहत में कलाम नहीं लेकिन इस तरह नहीं कि चार आँसू बहाए और जन्नत ख़रीद ली। ऐसे लोग भी होंगे जिन्होंने हुसैन (अ0) के हुस्ने अमल की रौश्नी में सही रास्ता मालूम कर लिया वह हुसैन (अ0) की शहादत के मक़सद को समझ गए, उन्होंने हुसैन (अ0)के अख़लाक़ की पैरवी की और हुसैन (अ0) की शहादत उनकी नजात का बाअिस हो गयी। हुसैन (अ0) ने यही चाहा था अब क़ौम जो कुछ समझे।

नज्म कहते हैं शहादत जिसको उर्फे आम में
यह हुसैन इब्ने अली का क़ौम को पैग़ाम है

□ □ □